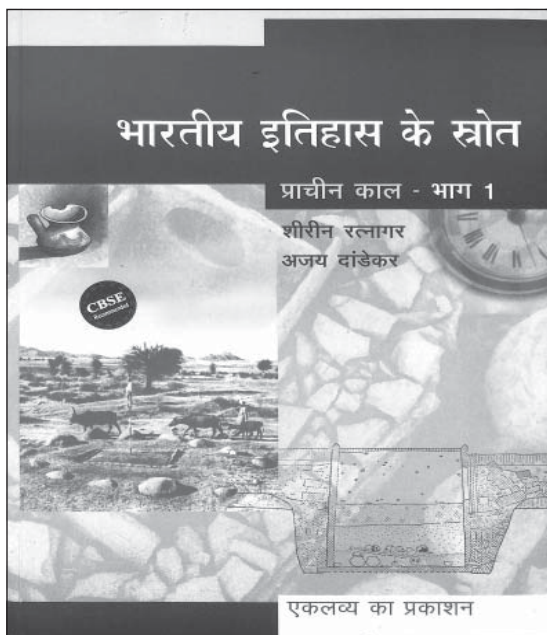


एक ताम्रपाषाण युगीन गाँव का जीवन निर्वाह

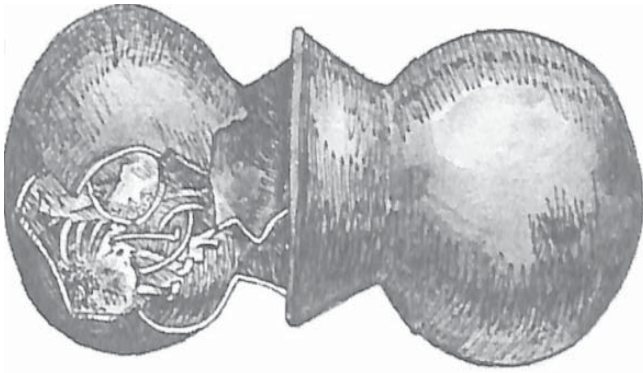


ईनामगाँव एक प्रागैतिहासिक स्थल है। वह समकालीन ईनामगाँव के पास, पुणे शहर से कुछ ही दूरी पर स्थित है। इस टीले का पता 1968 में लगा था जब उस पर बिखरे हुए टीकरे 'मालवा' और 'जोर्वे' वर्ग के पुरावशेष के तौर पर पहचाने गए थे।

मालवा संस्कृति का दौर 1700 ई.पू. से 1300 ई.पू. तक माना जाता है। इस संस्कृति की पहचान एक विशिष्ट दफन पद्धति और एक खास

तरह के मिट्टी के भाण्डों से बनती है। इसमें दो जुड़े हुए घड़ों में मृतकों को दफनाया जाता था। इस संस्कृति के अवशेष मध्य भारत और दक्कन के पठार पर पाए जाते हैं।

इसी इलाके में पनपा जोर्वे संस्कृति का दौर लगभग 1300 ई.पू. से 700 ई.पू. तक रहा था। इस संस्कृति की पहचान एक खास तरह के मिट्टी के बर्तनों से बनती है जो मालवा संस्कृति के बर्तनों से उन्नीस हैं।



मालवा संस्कृति की विशिष्ट दफन पद्धति में दो जुड़े हुए घड़ों में मृतकों को दफनाया जाता था।

डेक्कन कॉलेज (पुणे) के प्रोफेसरों ने 1968 से 1983 तक, सर्दियों में, इस टीले की बारह बार खुदाई की। हमारे देश में बहुत ही कम पुरातात्विक स्थल हैं जहाँ पर इतनी लम्बी और धैर्यपूर्ण खोज हुई है। बौद्ध धर्म सम्बन्धित गंगा घाटी के स्थानों पर भी, खुदाई इतनी सीमित रही कि किसी एक टीले से बहुत कम घरों के सम्पूर्ण फर्श-क्षेत्र प्रकाश में आए गए।* ईनामगाँव में करीब-करीब 137 कुटीरों के अवशेष खोदे गए जिनमें दीवारों की नींव, फर्श पर बिखरे हुए पुरावशेष, और झोपड़ियों के खाके शामिल हैं। इस प्रक्रिया में लगातार सुविज्ञ प्रश्न उठाए जाते रहे जिनके कारण शोधकार्य लम्बे समय तक जीवन्त बना रहा।

आपके मन में तुरन्त प्रश्न उठा होगा कि विद्वानों के लिए एक प्रागैतिहासिक टीले - मिट्टी, गिरी हुई दीवारें, ठीकरे, प्राचीन निवासियों के इधर-उधर बिखरे हुए कूड़े, गड्ढे वगैरह - से प्रश्न कैसे उत्पन्न होते होंगे?

पुरातत्व में हमें पुरातात्विक जानकारी गढ़नी पड़ती है, वह बनी-बनाई, टीलों में गड़ी हुई नहीं मिलती है। टीलों में केवल वस्तुएँ मिलती हैं। पुरातात्विक जानकारी के लिए हमें कई बातों के बारे में सोचना पड़ता है, जैसे पुरावशेषों को कैसे खोदा जाए, कैसे परखा जाए आदि। उदाहरण के लिए: पहले के पुरातत्वज्ञ खुदाई के बाद उन्हीं पुरावशेषों को जाँच के लिए रखते थे जो पूरे (यानी केवल

* इसका एक कारण यह है कि गंगा घाटी के कई टीलों में ई.पू. पहली सहस्राब्दी के अवशेष परवर्ती (कुषाण-युगीन, मध्यकालीन आदि) परत के नीचे दबे हुए हैं और इन्हें प्राप्त करना कठिन है।



मालवा कालीन बर्तन



जोर्वे कालीन बर्तन

कुछ टुकड़े नहीं) थे, या कलात्मक थे, या संग्रहालय में प्रदर्शन के लायक थे। वे 'कूड़े' - जैसे झुलसी हुई, कटी हुई भेड़ की हड्डियाँ या ताम्बे की कुठारी के टुकड़े या शंख की कतरनों का कूड़ा-करकट (शंख के फलक) नज़रअन्दाज़ कर देते थे। इसका यह परिणाम हुआ कि हम कई निष्कर्ष नहीं निकाल पाते थे, जैसे कि इस स्थल पर शंख की चूड़ियों की अधिक मात्रा का कारण क्या था या यहाँ पर क्या प्रागैतिहासिक निवासी चूड़ी बनाते थे?

एक और उदाहरण लें। एक टीले के नीचे वाली परत संस्कृति 'क' की है, और ऊपर वाली 'ख' की। इन दोनों के बीच क्या रिश्ता था, यह जानने के लिए हमें सामग्री का बारीक अध्ययन करना होगा। अगर एक परत

में 'क' और 'ख', दोनों प्रकार के ठीकरे मिलते हैं तो पुरातत्वज्ञ को अन्दाज़ा हो जाता है कि 'क' से 'ख' तक का पारगमन धीरे-धीरे हुआ होगा। लेकिन इस तथ्य का सामाजिक सन्दर्भ क्या था? क्या एक ही घर में दोनों तरह के बर्तनों का उपयोग होता था? खुदाई के समय 'क' और 'ख' प्रकार के ठीकरों या बर्तनों के प्राप्ति-स्थान का व्यवस्थित विवरण करने पर हमें यह पता लग सकता है।

ठीकरों का प्रयोगशाला में विश्लेषण करने पर ही मालूम होगा कि 'क' और 'ख' में तकनीकी भेद है [जैसे, मृत्तिका का संयोजन, अलाव या आँवे (कुम्हार की भट्ठी) का दहन और मृत्तिका का पकना] या इनके प्रयोजन भिन्न हैं।

ईनामगाँव की खुदाई के समय मुख्य शोध-समस्या थी, प्रागैतिहासिक अर्थव्यवस्था - खासकर जीवन-निर्वाह। टीले में 16 परतें उजागर हुईं और कुल मिलाकर 137 घरों के अवशेष प्राप्त हुए। इसके अलावा सभी प्रकार के पुरावशेषों की कई किस्म की जाँच हुई। पत्थर के हथियारों की परख खुर्दबीन (microscope) से हुई जिससे पता चला कि इनका प्रयोग चमड़े पर हुआ था या लकड़ी पर (यह घिसने के निशान से ज्ञात होता है)। झोपड़ियों की अन्दरूनी और बाहरी मिट्टी के नमूनों का विश्लेषण प्रयोगशालाओं में हुआ क्योंकि पुरातत्वज्ञ जानना चाहते थे कि मिट्टी में पशु-खाद कितना मिलता है।

इससे ज्ञात होगा कि पशुओं को कहाँ रखा जाता था। पशुओं की हड्डियों की परख से पशु की प्रजाति के अलावा मरते समय उसकी आयु का भी अनुमान होता है। अलग-अलग

पशुओं की हड्डियों की राशियों की तुलना हुई। इसलिए हम ईनामगाँव के भरण-पोषण की व्यवस्था पर सुविज्ञ निष्कर्ष निकाल पाते हैं, जबकि अन्य प्रागैतिहासिक स्थलों के सम्बन्ध में इस स्तर पर विश्लेषण सम्भव नहीं है। तो आपने समझ लिया होगा कि पुरातात्विक तथ्यों को पुरावशेषों से निर्मित किया जाता है।

इसके अलावा हमारे लिए एक और समस्या है। आधुनिक विचारधारा में तकनीकी एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। हम विकसित तकनीकी वाले समाज को ही 'विकसित समाज' समझते हैं। अक्सर हम इतिहास के केवल अनुपयुक्त अंश का गुणगान गाते रहते हैं - जैसे विजय करने वाले राजाओं का। मेरा कहना है कि वास्तव में यह सहज और छोटा ग्रामीण समाज हमारे यशस्वी पूर्ववृत्त का एक प्रतीक है। इसका कारण आगे स्पष्ट होगा।

शिरीन रत्नागर (1944-2026): एक भारतीय पुरातत्त्वविद् थीं, जिनका कार्य मुख्य रूप से सिन्धु घाटी सभ्यता पर केन्द्रित था। वे कई पुस्तकों और शैक्षणिक पाठ्यपुस्तकों की लेखिका थीं।

अजय दांडेकर: ग्रेटर नोएडा स्थित शिव नादर इंस्टीट्यूशन ऑफ़ एमिनेंस (डीम्ड टू बी युनिवर्सिटी) के इतिहास विभाग में अध्यापन करते हैं। आप शिरीन रत्नागर के छात्र रहे हैं।

यह अंश *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित शिरीन रत्नागर और अजय दांडेकर की किताब *भारतीय इतिहास के स्रोत: प्राचीन काल - भाग 1* से साभार।